शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 फरवरी 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

आधुनिक युगीन शास्त्रीय आलोचना एवं प्रमुख आलोचकों का प्रदेय

डॉ. मुक्ता यादव
विक्रम विश्वविद्यालय
उज्जैन, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास अत्यंत व्यापक एंव विस्तृत हो गया है। गद्य साहित्य में जहाँविविध विधाओं का विकास हुआ है वहीं हिन्दी आलोचना की यात्रा भी अविराम हो रही है। हिन्दी आलोचना अपने कई नवीन रूपों में दिखाई देती है। इन्हीं में से उसका एक रूप आधुनिक काल की आलोचना शैली में भी दृष्ठिगोचर होता है। वह है शास्त्रीय आलोचना। यह संस्कृत काव्यशास्त्र से प्रारम्भ होकर भक्तिकाल, रीतिकाल और फिर आधुनिकाल तक चली आ रही है। शास्त्रीय आलोचना के क्षेत्र में हिन्दी के अनेक समीक्षकों ने अपना योगदान दिया है। उन पर संस्कृत ही नहीं बल्कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र का प्रभाव भी देखा जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में आधुनिक युगीन शास्त्रीय आलोचना एवं प्रमुख आलोचकों के प्रदेय का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावना

आधुनिक युगीन शास्त्रीय आलोचना का अवलोकन करने पर हम यह देखते हैं कि छायावाद काल में शास्त्रीय विवेचन रुक-सा गया था, लेकिन भारतेन्दु युग से शुक्लोत्तर युग तक यह अत्यधिक विकसित हुई है। भारतेन्दु युगमें इसे स्वंय भारतेन्दु, प्रेमधन, व बालकृष्ण भटट् ने प्रोत्साहन दिया। द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी शास्त्रीय आलोचना के प्रणेता माने जाते हैं किन्तु इस आलोचना की विधि को संश्लिष्ट एवं व्यापक बनाने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को जाता है। शुक्लोत्तर युग तक आते-आते डॉ. नगेन्द्र, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, लाला भगवानदीन, डॉ. बच्चूलाल अवस्थी, डॉ. श्यामसुन्दर दा, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी आदि आचार्य इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए दिखाई देते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'नाटक' नामक अपनी पुस्तक में भारतीय एंव पाश्चात्य नाट्यशास्त्र दोनों को आधार बनाया। उन्होंने नाट्यशास्त्र, साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश के अध्ययन के साथ विल्सन की हिन्दू थियेटर्स एंव अन्य अंग्रेजी साहित्य का भी निर्देशन किया। इस प्रकार अपनी इस छोटी-सी कृति में इन्होंने भारतीय एंव पाश्चात्य दोनों परम्पराओं को आधार बनाया। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय रस सिद्धांत के साथ पाश्चात्य चरित्रात्मक तथा वैशिष्ट्य पूर्व आलोचना का समन्वय वाछंनीय है। महावीर प्रसाद द्विवेदी दूसरे आधार स्तम्भ के रूप में प्रस्तुत होते हैं। उनके रसन्त रंजन में संकलित आलोचनात्मक निबंध हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना में नवीन मोड़ उपस्थित करते हैं।

आधुनिक युगीन शास्त्रीय आलोचना

आधुनिक युग में शास्त्रीय आलोचना का विकास पश्चिम में ज्यादा हुआ है। किन्तु भारत में इसका पर्याप्त विकास भारतेन्दु युग से शुक्लोत्तर युग तक देख सकते हैं।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 फरवरी 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

हम यहाँ हिन्दी की आधुनिक युगीन शास्त्रीय आलोचना को चार चरणों में विभक्त कर सकते हैं :

1 भारतेन्दु युगीन शास्त्रीय आलोचना
2 द्विवेदी युगीन शास्त्रीय आलोचना
3 शुक्ल युगीन शास्त्रीय आलोचना
4 शुक्लोत्तर शास्त्रीय आलोचना

भारतेन्दु युगीन शास्त्रीय आलोचना

इस युग के केन्द्रीय साहित्यकार भारतेन्दु ने व्यावहारिक समीक्षाएँ नहीं लिखी किंतु उन्होंने नाटक शीर्षक से जो विस्तृत शास्त्रीय निबंध लिखा है और काव्य-रस के संबंध में जो स्फुट विचार व्यक्त किये हैं, उनसे तत्कालीन समीक्षा दृष्टि का अनुमान लगाया जा सकता हैं। डॉ. रामदरश मिश्र भी मानते हैं कि शास्त्रीय समीक्षा का निर्माण भारतेन्दु के द्वारा होता है। उनके अनुसार सैद्धांतिक समीक्षा की दृष्टि से भारतेन्दु जी का नाटक पहली महत्त्वपूर्ण समीक्षात्मक कृति कही जाती है। भारतेन्दु ने अपनी कृति में नाटक के अंगों पर गम्भीरता से विचार व्यक्त किया है। दृश्यकाव्य एवं रूपक व उपरूपक की परिभाषा के ऊपर विचार व्यक्त किया है। पश्चिम की नाटक प्रणालियों का अध्ययन किया। रस को वे अनुभव सिद्ध करने वाली वस्तु मानते हैं। उन्होंने भक्ति, सांख्य, वात्सल्य और आनंद चार रसों की स्वतंत्र सत्ता को माना। उन्होंने चौथे रस आनंद के संबंध में कहा है 'रसो वै सः यल्लब्धावनन्दी भवतीति'। भारतेन्दु नाटकों की प्रकृति और प्रक्रिया का विश्लेषण करते हैं तथा नाटकों के बदलते हुए रचना स्वरूप का प्रकाशन भी कर देते हैं। उन्होंने नाटक के कॉमेडी व ट्रेजडी नामक दो भेदों का उल्लेख भी किया है। इनके द्वारा रचित नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्राचीन नाट्यशास्त्र की जानकारी कराने के साथ ही युग प्रकृति का ध्यान रखकर प्राचीन जटिल शास्त्रीय नियमों से छूट लेने की आवश्यकता पर बल दिया है। भारतेन्दु के बाद शास्त्रीय आलोचना से सम्बन्ध रखने वाले बालकृष्ण भटट् का भी उल्लेख प्राप्त होता है। बालकृष्ण भटट् की संयोगिता स्वयंवर, परीक्षा गुरू, नीलदेवी इत्यादि आलोचनाएँ अत्यतं महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने भी रस को माना है। वैसे तो ये प्रगतिशील समीक्षक हैं, किन्तु कहीं-कहीं इनकी आलोचनाओं में हमें शास्त्रीयता का पुट नजर आता है। ये शास्त्रीयता के बन्धनों से जकड़ने के विरुद्ध थे। भट्ट जी पहले साहित्यकार हैं जिन्होंने कल्पना को मानसिक शक्ति के रूप में देखते हुए उस पर विचार किया है। बालकृष्ण भट्ट व भारतेन्दु के पश्चात एक नाम बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन का आता है। ये संयोगिता स्वंयवर की विस्तृत आलोचना के लिए विख्यात हैं। उन्होंने अपनी समीक्षा में भारतीय परम्परा के शब्दों - अंगीरस, प्रस्तावना, अंक, गर्भांक, नायक, नायिका अभिनय इत्यादि के प्रयोग से काम चलाया है। लाला श्री निवास द्वारा रचित संयोगिता स्वंयवर की आलोचना करते हुए मिश्रजी को जहाँ एक और उसमें वीर रस की निष्पत्ति के लिए युद्ध क्षेत्र में संयोजित उद्दीपन के उपादान खटके थे तथा पृथ्वीराज और संयोगिता के प्रथम समागम में लज्जापूर्ण सात्विक भाव की व्यजंना का भाव अनुचित प्रतीत हुआ था वहीं उसमें अनेक अवसरों पर प्रयुक्त प्रेम और नीतिपूर्ण वाक्यों को उन्होंने सोने के अक्षरों में लिखकर पहनने योग्य माना था। मिश्र जी हिन्दी को प्रत्येक दृष्टि से समृद्ध देखना चाहते थे। इसलिए वे पाश्चात्य प्रभाव से आए नये काव्य रूपों को भी अपने

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 फरवरी 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

देशवासियों की मानसिकता के अनुरूप ढालकर स्वीकार करना चाहते थे।

2 द्विवेदी युगीन शास्त्रीय आलोचना

शास्त्रीय समीक्षा का आगमन इसी काल से माना जाता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पाश्चात्य एंव भारतीय साहित्य से परिचित विचारवान व्यक्ति थे। भारतीय काव्यशास्त्र की शब्दावली से वे अच्छी तरह परिचित थे। द्विवेदी जी ने भी अपने निबधों में शास्त्रीय समीक्षा के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। उनका निबंध संग्रह रसज्ञ-रंजन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें साहित्य के विभिन्न पक्षों और उसकी समस्या पर विचार व्यक्त किया गया।

रसज्ञ-रंजन में उन्होंने लिखा है, "आचार्यों ने प्रतिभा को ही काव्य का कारण मानकर व्युतपत्ति को उसकी सुन्दरता और अभ्यास की वृद्धि हेतु माना है। रस के शास्त्रीय निरूपण के संबंध में तो द्विवेदी जी का कहना है कि अंलकार, रस और नायिका वर्णन तो बहुत हो चुका है। वे अर्थसौरस्य को कविता का प्राण मानते हैं। इससे उनका तात्पर्य शब्द व अर्थ का सटीक सामन्जस्य प्रतीत होता है। कविता और गद्य का अंतर स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि कविता और पद्य में वही अंतर है जो अंगरेजी की पोइट्री में है। उन्होंने कवि का सबसे बड़ा गुण नई-नई बातों का रूझान बताते हुए कल्पना पर बल दिया है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि द्विवेदी जी भारतीय काव्य के आधारभूत मौलिक तत्त्वों के स्वरूप को उपयोगी मानते हैं, किन्तु उसके जटिल विस्तार बंधन से बंधकर कविता जीवन के व्यापक संन्दर्भो से कटकर निष्प्राण हो जाये ऐसा नहीं चाहते। इस युग में शास्त्रीय आलोचना को आगे बढ़ाने में मिश्रबन्धु का भी योगदान है। इनकी दृष्टि मूलतः कलावादी थी। इनके समर्थकों में कृष्णबिहारी मिश्र का प्रमुख स्थान है। उन्होंने अपनी देव व बिहारी नामक आलोचनात्मक कृति में स्पष्ट रूप से कहा है कि कविता के लिए रस-परिपाक होना चाहिए। उपयोगितावाद के चक्कर में डालकर ललितकला का सौन्दर्य नष्ट करना ठीक नहीं। वे शास्त्रसिद्ध समीक्षक थे। इन्होंने देव व बिहारी के एक-एक छंद को लेकर विचार किया है। जटिल शास्त्र बंधन में बंधकर उसका मूल्याकंन किया है। द्विवेदी युग के समीक्षकों में लाला भगवानदीन का उल्लेख करना समीचीन होगा। ये अतिशयोक्ति प्रधान काव्य-कला चातुरी के प्रशंसक थे। इन्हें बिहारी और देव नामक समीक्षा कृति के लेखक रूप में ख्याति प्राप्त है। यह देव व बिहारी ' के जवाब में लिखी गयी थी। इन्होंने नायिका भेद का समर्थन उसे मनोवैज्ञानिक बनाकर किया। मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती की आलोचना उसकी भाषा को केन्द्र में रखकर की है। लालाजी ने रीतिकालीन परम्परा का अनुसरण करते हुए अंलकार मंजूषा (1916) ई. नामक लक्षण ग्रन्थ भी लिखा, परंतु यह मौलिक नहीं कहा जा सकता है।

द्विवेदीयुगीन शास्त्रीय आलोचना के संदर्भ में एक नाम श्यामसुदंरदास का भी उल्लेखनीय है। इन्होंने साहित्यालोचन व रूपकरहस्य का प्रणयन कर भारतीय एंव पाश्चात्य और सैद्धांतिक आलोचना को हिन्दी में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इनका साहित्यालोचन शास्त्रीय दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय माना गया है।

3 शुक्ल युगीन आलोचना

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का लेखन सन् 1900 ई. से लेकर 1940 ई. तक विस्तृत है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने शास्त्रीय समीक्षा के दो पहलुओं को स्पष्ट किया है पहला तो वह संस्कृत

की समृद्ध शास्त्रीय समीक्षा परम्परा को पूर्णतः इन्कार नही कर पाते तथा दूसरा यह कि पाश्चात्य समीक्षा के नये मूल्यों को स्वीकारने में हिचकिचाते नहीं हैं। शुक्ल जी ने शास्त्रीय समीक्षा को कारगर बनाया है। शुक्ल जी परिवेश और लेखन के अन्तः सम्बन्धों की समझ रखने वाले युग स्रष्टा समीक्षक हैं। उनकी काव्य में रहस्यवाद, चिंतामणि तथा रसमीमांसा जैसी कृतियाँ आज भी प्रकाशपुंज का काम करती हैं।

"चिन्तामणि में शास्त्रीय आलोचना के कई निबंध हैं। चिन्तामणि के खंड उपलब्ध हैं। इसके प्रथम भाग में आरम्भिक दस निबंध मनोभाव संबंधी हैं शेष निबंध आलोचनात्मक हैं। चिन्तामणि के प्रथम भाग में सात आलोचनात्मक निबंध एंव द्वितीय भाग में तीन आलोचनात्मक प्रबंध हैं।

आचार्य शुक्ल ने रीति व वक्रोक्ति का भी इसमें उल्लेख किया है। अंलकारों की स्थिति को वे विभावपक्ष के अंतर्गत मानते हैं। बिम्ब के सम्बन्ध में वे चिंतामणि भाग प्रथम में कहते है "बिम्बग्रहण निर्दिष्ट गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है। बिम्बग्रहण वही होता है जहाँ कवि सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ग, आकृति तथा उसके आसपास परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण दे देता है।"

इसके बाद उनका ग्रंथ रस मीमांसा आता है। ये ग्रंथ इनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ। इसे मिश्र जी ने भारी परिश्रम से संपादित करके रस मीमांसा नाम दिया। रामचन्द्र शुक्ल की सौन्दर्य विवेचना का मूलाधार भी रसात्मक व्यंजना के सूत्रों पर आधारित रहा है। अतः नामकरण समीचीन ही था। शुक्ल जी गंभीर से गंभीर शास्त्रीय प्रसंगों को, काव्योपम सरस-सरल ढंग से कहने की प्रतिभा के धनी थे।

शुक्ल जी ने रस मीमांसा में सरसता की भी एक दूसरी परिभाषा भी दी है। "लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है।"

"शुक्ल जी की आलोचना सरणि पर अग्रसर होने वाले आलोचकों में कृष्णशंकर शुक्ल ने केशव की काव्यकला (1934) और कविरत्नाकर (1935) शीर्षक कृतियों में केशवदास और रत्नाकर की जीवनी तथा उनके काव्य के विभिन्न पक्षों पर अत्यंत सहृदयता तथा तत्वान्वेषी दृष्टि से विचार किया है। इनकी रस मीमांसा में काव्य में कल्पना तत्व विद्यमान है। इस बात का उल्लेख किया गया है। वे कहते हैं, "कल्पना में जो कुछ उपस्थित होगा वह व्यक्ति या वस्तु विशेष होगा। सामान्य या जाति की तो मूर्त भावना हो ही नही सकती।"

शुक्ल युग के एक अन्य समीक्षक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र हैं। बिहारी की वाग्विभूति (1936) में उन्होंने बिहारी के दोहों पर पूर्ववर्ती काव्य के प्रभाव का विवेचन करते हुए शास्त्रीय आलोचना पद्धति अपनायी है।

शुक्लजी की आलोचना पद्धति से प्रभावित आलोचकों में रामकृष्ण शुक्ल शिलीमुख कृत प्रसाद की नाट्यकला (1929), बृजरत्नदास कृत हिन्दी नाट्य साहित्य (1930), रामकुमार वर्मा कृत कबीर का रहस्यवाद (1931) भुवनेश्वर मिश्र कृत माधव मीरा की प्रेम साधना (1934), गुप्त की काव्यधारा (1936) तथा रामनाथ सुमन कृत प्रसाद की काव्य कला (1938) उल्लेखनीय है।

शुक्लोत्तर अद्यतन आलोचना

हिन्दी की शास्त्रीय समीक्षा की नींव तो भारतेन्दु युग में पड़ी, किन्तु शुक्ल युग तक आतेआते इसका अत्यंत विकास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हुआ और उनकी इसी सैद्धांतिक समीक्षा को आगे बढ़ाने का कार्य शुक्लोत्तर युग के

समीक्षाकों ने किया। शुक्लोत्तर आलोचना का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने पर कहना न होगा कि यह सैद्धांतिक क्षेत्र में सम्पन्न नहीं हुई अपितु सम्पन्नता प्रामाणिकता और गहराई दोनों को लेकर हुई है। शुक्ल जी के बाद हिन्दी कविता के शास्त्रीय एंव सैद्धांतिक विवेचन की व्यापक और वैविध्यपूर्ण परम्परा का विकास अनेक रूपों में उपलब्ध होता है। शुक्लोत्तर युग में शास्त्रीय आलोचना के क्षेत्र में अनेक ग्रंथ ऐसे रखे गए, जिसमें छंद, अलंकार वक्रोक्ति इत्यादि पर स्वतंत्र रूप से विचार प्रस्तुत हुआ है।

हिन्दी में बाबू गुलाबराय की स्थिति मूलतः निबंध लेखक और आलोचना के रूप में है। नवरस, काव्य के रूप और अध्ययन और आस्वाद उनकी अन्य कृतियाँ हैं। जिनमें उनके सैद्धांतिक चिंतन का प्रौढ़ और परिमार्जित रूप है। इन ग्रंथों में पूर्व और पश्चिम दोनों की सैद्धांतिक मान्यताओं का अनुशीलन प्रस्तुत करते हुए साम्य व वैषम्य को दर्शाया गया है। प्रस्तुत ग्रंथ में अठारह अध्याय हैं। जिनमें क्रमश: काव्य की आत्मा, काव्य की परिभाषा, काव्य और कला, साहित्य की मूल प्रेरणाएं, काव्य हेतु, सत्यम, शिवम् सुन्दरम कविता और स्वप्न, काव्य के वर्ण्य विषय और मनोविज्ञान, रसनिष्पति, साधारणीकरण, कवि और पाठक के त्रयात्मक व्यक्तित्व, काव्य के विभिन्न रूप, काव्य का कलापक्ष, शब्द शक्ति, ध्वनि और उसके भेद अभिव्यंजनावाद एवं कलावद तथा समालोचना के मान पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया गया है। आलोचना के मान के सन्दर्भ में संस्कृत के अलंकार को वक्रोक्ति, रीति, ध्वनि, रस का विवेचन किया गया है। मूल्य सम्बंधी आलोचना पर भी विचार किया है। इनके बाद आचार्य सीताराम चतुर्वेदी आते हैं। ये संस्कृत और हिन्दी के विद्वान हैं और आपने अनेक काव्यग्रथों और नाटकों का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद किया है। समीक्षा शास्त्र नामक ग्रंथ में इन्होंने समीक्षा, काव्य, कथा नाटक, उपन्यास आदि प्रायः सभी विधाओं पर शास्त्रीय तरीके से विचार किया है। यह चार खण्डों में विभक्त है। प्रथम में समीक्षा पर विस्तृत और शास्त्रीय दृष्टि से विचार प्रस्तुत हुए हैं। द्वितीय अध्याय में भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख काव्य सम्प्रदायों का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। तृतीय में विदेशों की लगभग पन्द्रह समीक्षा पद्धतियों पर विस्तृत वर्णन किया है। चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत विश्व के लगभग सैकडों साहित्यिक वादों एंव प्रवृत्तियों का सैद्धांतिक दृष्टि से विवेचन किया गया है।

इस युग में शास्त्रीय आलोचना के क्षेत्र में श्री वटेकृष्ण का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इन्होंने वीर रस का शास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचन प्रस्तुत किया है। ग्रंथ में नौ अध्याय हैं, जिनमें क्रमश: रस, उत्साह, विभाव, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव, वीर रस के भेद और वीर रस के रूप में स्वीकर करते हुए वीर रस के विभाव उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव पर शास्त्रीय चर्चा की है।

इसी परम्परा में शुक्लोत्तर आलोचक डॉ. कुमार विमल भी आते हैं। यह मुख्यतः लेखक व आलोचक हैं। नयी कविता के सैद्धांतिक पहलू पर आलोचना के विभिन्न अंकों में आपके विचार प्रकाशित हुए हैं। कला विवेचन तथा सौन्दर्य शास्त्र के ग्रंथ हैं। उनके मत से नये कवि भाव की अपेक्षा कला के प्रति अधिक सजग, सचेष्ट होकर आस्थावान हैं। नयी आलोचना के संबध में लेखक का कथन है कि इसका विकास साहित्यालोचन के अंतर्राष्ट्रीय मानदण्डों के आधार पर हो रहा है। इसी सन्दर्भ में काव्यशास्त्र

और सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर को स्पष्ट किया गया है।

डॉ.इन्द्रपाल सिंह ने श्रृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन नामक ग्रंथ लिखा है। डॉ. ओमप्रकाश का ग्रंथ हिन्दी अलंकार साहित्य भी आ जाता है। इसी श्रृंखला में डॉ. रामलखन शुक्ल का साधारणीकरण एक शास्त्रीय अध्ययन नामक ग्रंथ है। डॉ. निर्मला जैन कृत रस सिद्धांत और सौन्दर्य शास्त्र नामक ग्रंथ आता है। हिन्दी की शास्त्रीय आलोचना के क्षेत्र में डॉ. देवराज भारी का ग्रंथ हिन्दी में शब्दांलकार विवेचन भी महत्त्वपूर्ण है। डॉ. शन्तिगोपाल पुरोहित रचित हिन्दी काव्यशास्त्र का विकासात्मक अध्ययन शोध प्रबंन्ध है। यह भी शास्त्रीय आलोचना का प्रमुख ग्रंथ है। आलोच्य अवधि में सैद्धांतिक आलोचना की दिशा में अनेक ग्रंथों का प्रकाशन हुआ है। पं रामदहिन मिश्र कृत काव्य में प्रस्तुत योजना (1948 ई.) पं. बलदेव उपाध्याय कृत भारतीय साहित्य शास्त्र द्वितीय भाग (1948 ई.), डॉ. भगवत्स्वरूप मिश्र कृत ' हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास , डाॅ. सुरेषचन्द्र गुप्त कृत हिन्दी काव्य में अन्योक्ति (1960 ई.) आदि अनेकानेक ग्रंथों में उल्लेख किया जा सकता है।

शुक्लोत्तर युगीन साहित्य आलोचना के साहित्याकाश में प्रबन्धन क्षत्रों की भांति अपना अस्तित्व बना लेने की कोशिश नव पीढी के आलोचक डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा ने भी की है। उनका शब्दशक्ति संबंधी भारतीय एंव पाश्चात्य अवधारणा तथा हिन्दी काव्यशास्त्र नामक शोध ग्रंथ इसका उदाहरण है। यह ग्रंथ नौ अध्यायों में विभक्त है। जिसकी भूमिका हिन्दी के प्रसिद्ध शास्त्रीय आलोचक आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी द्वारा रचित है। उन्होंने शास्त्रीय समीक्षा विषय पर कार्य हेतु डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा की सराहना की और यह लिखा कि आज जहाँ काव्यालोचन में भारतीय काव्यशास्त्र गैर जरूरी और आप्रासंगिक है। ध्वनि सिद्धांत भी अभीष्ट अर्थ और अनुभव के अद्वैत तक नहीं पहुँचाता। काव्यचिंतन के क्षेत्र में दुर्भाग्य की बात है कि शब्द सामर्थ्य या शब्द शक्ति के व्यवस्थित विवेचन का दरवाजा ही बंद कर दिया गया और अंगूर खट्टे हैं कहकर उसकी उपेक्षा कर दी गई। वहीं ऐसा शीर्षक विषय लेकर मंथन करना और साहित्य चितंकों के समक्ष रखा जाना निश्चित ही सराहनीय कार्य है। इसके माध्यम से साहित्य मंथन के नाम पर जो हो रहा है, उसमें शब्द शक्ति की क्या दशा है, आज नए चिंतन में उसमें न कुछ जोड़ा जा रहा है और न ही उसका सहारा लेकर काव्य विश्लेषण हो रहा है। यदि साहित्य चिन्तक इस दिशा में सक्रिय हों तो व्याख्या जगत् का गडबडझाला निःशेष हो जाए। यह ग्रंथ हिन्दी की शास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से काव्यशास्त्र के लिए एक वरदान स्वरूप है। आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में जहाँ आज आलोचना जैसी गद्य विद्या की उपेक्षा हो रही है वही यह ग्रंथ नवीन राह की तरह है।

निष्कर्ष

इस प्रकार आधुनिक युगीन शास्त्रीय आलोचना आदर्शनिष्ठ ग्रंथों व शास्त्रीयता का काल रहा है। भारतेंदु जी ने अपने इस ग्रंथ के माध्यम से शास्त्रीय आलोचना का सूत्र तैयार किया है। द्विवेदी युग में शास्त्रीय आलोचना के विकास में ऐसे तो द्विवेदी जी का रस रंजन उल्लेखनीय है। इस काल में मिश्र बन्धु, श्यामसुन्दरदास, पद्मसिंह शर्मा आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा, किन्तु इस काल की शास्त्रीय आलोचना संस्कृत से मुक्त नहीं हो पाई है। अतः यह कार्य आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के हाथों से सम्पन्न होता है।

किन्तु इनकी शास्त्रीय पद्धति संस्कृत साहित्य की शास्त्रीय पद्धति से भिन्न है। शुक्लजी सफल क्रांतदर्शी समीक्षक हैं। आपने शास्त्रीय समीक्षा को नवीन रूप प्रदान किया है। शुक्ल युग में शास्त्रीय समीक्षा को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा शिखर पर पहुंचाया गया, किन्तु उसके बाद शुक्लोत्तर युग में नवीन दिशा प्रदान करने का श्रेय पं. रामदहिन मिश्र, लक्ष्मीनारायण, सुधाषु, डॉ. भोलाशंकर व्यास, डॉ.नगेन्द्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी इत्यादि आलोचकों को जाता है। इन सभी ने शास्त्रीय आलोचना से सम्बन्धित उल्लेखनीय ग्रंथों का विवेचन कर इस पद्धति को जीवित रख उसे आगे बढाने का काम किया है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी हैं। जिन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र से प्रेरित हो हिन्दी में अनेक शास्त्रीय ग्रंथों को प्रस्तुत कर हिन्दी की आधुनिक शास्त्रीय आलोचना के मैदान में अपना अद्वितीय स्थान बनाया है और शास्त्रीय आलोचना को समृद्ध किया है। हिन्दी के विद्वान भी इस क्षेत्र में अपने कार्य को निरन्तर आगे बढ़ाने में लगे हुए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- *रामचन्द्र तिवारी, आधुनिक हिन्दी आलोचना सन्दर्भ एंव दृष्टि, प्रत्यूष प्रकाशन सरस्वती सदन गोरखपुर 1997 ई.*
- *रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी आलोचना के शिखरों का साक्षात्कार, लोकभारती प्रकाशन 15 - I , 1996*
- *डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,1992 ई.*
- *डॉ. इन्द्रनाथ मदान, हिन्दी आलोचना और परख पहचान, लिपि प्रकाशन दिल्ली, 1964*
- *डॉ. सीतारामदीन, साहित्यलोचन सिद्धांत : एक अध्ययन, अनुपम प्रकाशन पटना - 6, 1991*
- *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि भाग - 1, इडियन प्रेस, 2002*
- *चिन्तामणि भाग - 2 सरस्वती मंदिर, काशी, 2003*
- *डॉ. श्यामसुदंरदास, साहित्यालोचन, इंडियन प्रेस प्रयाग, 1994*
- *डॉ. रामदरश मिश्र, हिन्दी आलोचना का इतिहास, हिन्दू विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1960*
- *गुलाबराय, काव्य के रूप, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2014*
- *डॉ. बच्चूलाल अवस्थी, ध्वनि सिद्धांत तथा तुलनीय साहित्य का चिंतन मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1962*